साहस की यात्राएं

रोमांचकारी यात्राओं के रोचक वृत्तांत

संपादक
यशपाल जैन

१९६४
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक

मार्तंड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

मूल्य

डेढ़ रुपया

मुद्रक

हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस

प्रकाशकीय

यात्रा करना किसे अच्छा नही लगता ! अगर यात्रा कठिन हो तो परेशानी जरूर होती है, पर उसके पूरे हो जाने पर ऐसा आनंद आता है कि उसकी कल्पना नही की जा सकती ।

किशोरों मे साहसिक यात्राए करने का बड़ा चाव होता है। इस किताब में ऐसी ही यात्राओ का हाल दिया है। कोलम्बस ने कितनी कठिनाइयो मे नई दुनिया की खोज की, एवरेस्ट पर चढ़नेवालों ने कितनी मुसीबतो का सामना किया और गोमुख जानेवालों की जान किस तरह खतरे मे रहती है, उस सबका हाल इस पुस्तक मे पढ़िये।

हमें आशा है कि इस पुस्तक को पढ़कर पाठकों मे हौसला पैदा होगा और वे अधिक-से-अधिक यात्राएं करेंगे।

—मंत्री

विषय-सूची

फाहियान की भारत-यात्रा

: १ :

आज से कोई सोलह सौ साल पहले की बात है, उस जमाने की, जब रेल और हवाई जहाज का कोई नाम तक नहीं जानता था। लोग बहुत कम इधर-उधर जाते थे। अगर जाते भी थे तो पैदल। लेकिन बहुत-से ऐसे घुमक्कड़ भी हुए हैं, जो नदियों, पहाड़ों और दूरी की परवाह न करते हुए भी निकल पड़ते थे। ऐसा ही एक घुमक्कड़ था फाहियान। फाहियान चीन देश का रहनेवाला था। वह हजारों मील पैदल चलकर भारत आया था।

आपने चीन का नाम जरूर सुना होगा। वह हमारे देश के उत्तर-पूर्व में है। इस पड़ोसी देश से हमारा सम्बन्ध बहुत पुराना है। हमारे यहां से बौद्ध धर्म वहां गया और खूब फला-फूला। लम्बाई-चौड़ाई और आबादी में चीन भारत से अधिक बड़ा है।

इसी चीन देश में सोलह सौ साल पहले फाहियान पैदा हुआ था। बचपन में उसका नाम कुंग रक्खा गया। कुंग का जन्म वु-यांग नगर में हुआ था।

कुंग बचपन में बहुत बीमार रहता था। एक रोग ठीक होता कि दूसरा लग जाता। उसके मां-बाप ने बहुत दवा-दारू की, पर कुंग अच्छा नहीं हुआ। मां-बाप दोनों बहुत परेशान थे।

एक दिन जब कुंग की तबीयत बहुत खराब थी तो उसके घर एक आदमी आया। उस आदमी ने कुंग को देखा। देखकर उसने सलाह दी कि कुंग को किसी बौद्ध विहार में भेज दिया जाय। पहले तो कुंग के बाप ने वैसा करने से इन्कार कर दिया, पर अन्त में यह सोचकर कि कुंग शायद अच्छा हो जाय, उन्होंने उसे बौद्ध विहार में भेजना स्वीकार कर लिया।

कुंग अपने बड़े भाई के साथ बौद्ध विहार में पहुंचा। उसे वहां छोड़कर बड़ा भाई लौट आया। विहारों में बड़ी शान्ति होती है। वहां भिक्षु यानी साधु निवास करते हैं। धर्म की चर्चाएं होती हैं। कुंग वहां पहुंचकर कुछ ही दिनों में अच्छा हो गया। उसकी तन्दुरुस्ती सुधर गई। उसके पिता ने यह देखकर उसे कुछ दिन और वहीं रखने का निश्चय किया। लेकिन कुछ ही दिनों बाद कुंग के पिता की मृत्यु हो गई। कुंग की माता ने उसे वापस बुलाने की बात सोची। उन्होंने कुंग के चाचा को विहार में भेजा ताकि वह उसे घर ले आयें। वह बौद्ध विहार की

ओर चले। जब वहां पहुंचे तो देखा कि कुंग खूब स्वस्थ और प्रसन्न है। साथ ही बहुत बदला हुआ भी है। कुंग के मुख पर विद्या और ज्ञान की चमक है।

उसके चाचा ने घर चलने के लिए कहा तो कुंग ने इन्कार कर दिया। चाचा ने पिताजी के मरने की बात नहीं बताई थी, क्योंकि उसे सुनकर उसको बहुत दुःख होता। लेकिन जब कुंग ने घर वापस जाने से मना किया तो चाचा ने वह दुःखद सूचना उसे दे दी। उसने बड़ी वेदना से वह खबर सुनी, पर वह घर वापस जाने को तैयार न हुआ। अभी वह बच्चा ही था, पर उसने चाचा से ज्ञान और धर्म की बड़ी-बड़ी बातें कीं। उसने उन्हें यह भी बताया कि यह संसार निस्सार है और आदमी को मुक्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। बच्चे के मुंह से ज्ञान और धर्म की बातें सुनकर चाचा को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने फिर भी उसे बार-बार समझाया, पर वह तैयार नहीं हुआ। आखिर हारकर उसके चाचा लौट गये। कुंग ने विहार में रहकर बहुत-सा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उस समय के लेखों में तो यहांतक लिखा है कि कुंग ने तीन साल की उम्र में ही सारा ज्ञान पा लिया था।

कहते हैं, तीन वर्ष का होते ही कुंग ने भिक्षु बनने की बात तय कर ली थी। बौद्ध भिक्षु हमारे यहां के साधुओं

की तरह होते हैं। ये लोग संसार की मोह-ममता त्याग देते हैं। नगरों में नहीं रहते। किसी एकान्त में बैठकर भजन करते हैं और पवित्र जीवन बिताते हैं।

जब कुंग ने भिक्षु होने की बात कही तो बौद्ध विहार के प्रधान ने स्वीकार कर ली और कुंग भिक्षु हो गया। बौद्ध भिक्षु अहिंसा के पुजारी होते हैं। वे छोटे-से-छोटे जीव की भी हत्या नहीं करते। वे स्वयं पवित्र जीवन बिताते हैं और दूसरों को भी यही सिखाते हैं।

: २ :

इस प्रकार तीन वर्ष की अवस्था में ही कुंग ने भिक्षु का बाना पहन लिया। विहार के सब लोग उसे फाहियान के नाम से पुकारने लगे। फाहियान उसे कहते हैं, जो धर्म के सम्बन्ध में ज्ञानी होता है और खूब नाम कमा लेता है। इतनी छोटी-सी उम्र में शायद ही किसीने इतना ज्ञान प्राप्त किया हो।

एक दिन विहार में कुछ चोर घुस आये। उस समय भिक्षु लोग खेत में धान काट-काटकर जमा कर रहे थे। चोरों को देखते ही सब भिक्षु डरकर भाग खड़े हुए, लेकिन फाहियान नहीं भागा। वह वहीं खड़ा रहा। चोरों ने यह देखा तो उसके पास पहुंचे और पूछा, "तुम यहां क्यों खड़े हो? तुम्हें डर

नहीं लगता ?"

यह सुनकर फाहियान बोला, "नहीं, मुझे डर नहीं लगता। मैं तुम्हीं लोगों के बारे में सोच रहा हूं। तुम लोगों ने पिछले जन्म में दान नहीं दिया, इसलिए

तुम दरिद्र हुए और चोरी कर रहे हो। इस चोरी करने का फल अब तुम्हें क्या मिलेगा, यही मैं सोच रहा हूं।"

फाहियान की इस बात का प्रभाव चोरों पर पड़ा। बस, इतनी बात कहकर फाहियान विहार की तरफ चला तो चोर भी पीछे-पीछे चल दिये। फिर उन्होंने फाहियान से क्षमा मांगी और कभी चोरी न करने की

प्रतिज्ञा की।

चोरों ने सारा धान विहार में पहुंचा दिया और अच्छा जीवन बिताने की सीख लेकर लौट गये।

फाहियान धर्म की पुस्तकों को बहुत मन लगाकर पढ़ता था। पढ़ता ही नहीं उनपर सोचता भी था। विहार में रहकर वह अपना ज्ञान बढ़ाता जा रहा था।

इधर जब उसकी मां को यह खबर मिली कि उसके बेटे ने घर आने से इन्कार कर दिया है तो वह बीमार पड़ गई। थोड़े ही दिनों में वह चल बसीं। लेकिन फाहियान फिर भी घर नहीं आया। उसका घर तो सारी दुनिया हो गई थी।

बीस साल की उम्र तक वह खूब मन लगाकर पढ़ता रहा। उसने कठोर साधना की। ब्रह्मचर्य का पालन किया, संयम से रहने लगा। इस कठोर साधना, संयम और ज्ञान के कारण उसका नाम दूर-दूर तक फैल गया। बीस वर्ष की उम्र में वह बौद्ध मठों का संगठन करनेवाले भिक्षुओं में प्रमुख हो गया। बौद्ध धर्म के विषय में और अधिक जानने तथा नये-नये ग्रन्थों को पढ़ने की उसकी इच्छा और भी बढ़ गई।

उस जमाने में चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार बहुत था, पर वहां धर्म-ग्रंथों की बहुत कमी थी। फाहियान ज्ञान का प्यासा था। उसने वहां पुस्तकों और

धार्मिक ग्रंथों की खोज की। उसे बड़ी निराशा हुई। एक तो वहां पुस्तकें ही कम थीं, ऊपर से वे फटी-फटाई थीं। कुछको दीमक चाट गई थी। उसे मालूम था कि भारत में बौद्ध धर्म के ग्रंथों का खजाना है। इसलिए उसने सोचा कि भारत चलकर भगवान् बुद्ध के देश का दर्शन भी करना चाहिए और पुस्तकें भी लानी चाहिए।

उसने भारत-यात्रा की बात तय करली। उस जमाने में विदेश जाने के लिए राजा की आज्ञा लेनी पड़ती थी। फाहियान ने राजा लुंगआन के पास जाकर उससे अनुमति मांगी। राजा ने दे दी।

आज्ञा मिलते ही फाहियान विहार से निकल पड़ा। साथी भिक्षुओं को बहुत दुःख हुआ। उन्हें समझा-बुझाकर वह लुंग नाम के जिले में पहुंचा। वहां उसे पांच मित्र मिले। वे पांचों भी भारत जाने की तैयारी में थे। फाहियान ने उन पांचों मित्रों को साथ लिया और वे सब लोग उत्साह से भारत की ओर रवाना हुए।

चलते-चलते एक ऐसी जगह आई, जहां बहुत बड़ी एक बालू की नदी थी। नदी में पानी बहुत था, बालू भी काफी थी। उस नदी को पार करना टेढ़ी खीर थी। तैरना कोई जानता नहीं था। फाहियान

सोच-विचार में पड़ गया।

वह उस प्रदेश के बड़े अधिकारी से मिला। उसने कहा, "हम भारत जाना चाहते हैं, पर बालू की नदी हमारा रास्ता रोक रही है। आप हमारी मदद कीजिये।"

अधिकारी भारत का नाम नहीं जानता था। वह तथा वहां की जनता भारत को 'बुद्ध देश' के नाम से जानते थे, क्योंकि भगवान् बुद्ध वहां पैदा हुए थे। और चीनी लोग बौद्ध धर्म को मानते थे। जब अधिकारी को यह पता चला कि फाहियान और उसके पांचों दोस्त भगवान बुद्ध के देश जाना चाहते हैं तो उसने फौरन नदी पार करने का इन्तजाम करा दिया। नावें बनवाईं, खाने-पीने का सामान दिया और यह भी कहा कि भारत से लौटते हुए वे उसके प्रदेश से होकर जायं।

दो नावों में बैठकर फाहियान और उसके पांच मित्रों ने नदी पार की। उन्होंने मल्लाहों को बहुत-सा इनाम भी दिया।

नदी पार करते ही बीहड़ रास्ता सामने आया। गर्मी एकाएक बढ़ गई और तपती हुई हवाओं से सामना हुआ। चारों ओर धूल उड़ रही थी। गर्मी के मारे बुरा हाल हुआ जा रहा था। सबको प्यास

लग रही थी। पानी की तलाश में सभी भटक रहे थे। चारों ओर रेगिस्तान फैला हुआ था। सब लोग अलग-अलग हो गये। पानी की खोज में आगे बढ़ते ही फाहियान को मैदान में हड्डियां और पिंजर बिखरे हुए दिखाई दिये। ऐसा लगता था, मानों वह हड्डियों

का मैदान हो। फाहियान घबरा गया। उसने सोचा कि इस मैदान में आकर लोग जरूर मर जाते होंगे। लेकिन उसने हिम्मत न हारी। दोस्तों से बिछुड़कर फाहियान अकेला ही चलता रहा। हिम्मत से कठिन-से-कठिन काम सरल हो जाते हैं। फाहियान ने रेगिस्तान पार कर लिया।

फिर वह एक जगह रुक गया। कुछ दिनों बाद

उसके पांचों मित्र वहां आकर मिल गये। यात्रा फिर शुरू हुई। इस बार यह तय हुआ कि सब लोग अलग-अलग जायं।

फाहियान फिर अकेला चल पड़ा। कीचा नामक स्थान में पहुंचकर उसने वहां रक्खे भगवान् बुद्ध के दांत और पीकदान को देखा और आगे बढ़ चला।

कीचा में उसके दो साथी फिर मिल गये। तीनों आगे बढ़े। अब एक नई मुसीबत सामने आई। सुगंलिग पहाड़ पर पहुंचते ही बर्फीली हवाओं से उसका सामना हुआ। यह बर्फीली हवा सांपों की सांस पैदा होती थी। कहते हैं, उस पहाड़ पर सांप-ही सांप रहते थे। जब वे सांस लेते थे तो बड़ी तेज और ठण्डी हवा चलने लगती थी। पत्थर टूट-टूटकर गिरने लगते थे और आंधियां आने लगती थीं। फाहियान के दोनों साथियों की हिम्मत घूट गई। तभी उन्हें उस पहाड़ के आस-पास रहनेवाले कुछ पहाड़ी लोग मिले। पहाड़ी लोगों ने बहुत हिम्मत बंधाई, तब कहीं फाहियान के साथी पहाड़ पार करने को तैयार हुए। पहाड़ पार करके फाहियान एक गांव में पहुंचा। उसने देखा कि वहां के रहनेवाले अज्ञान के अन्धकार में डूबे हुए हैं। वहां एक भी पढ़ा-लिखा आदमी [illegible] है। उन्हें यहतक नहीं मालूम था कि पानी

बादलों से बरसता है। जब फाहियान ने उन्हें यह बताया तो एक ने कहा, "हमें पानी नदी से मिलता है। भला आसमान से पानी कैसे बरस सकता है?"

उन पहाड़ी लोगों के अज्ञान को देखकर फाहियान मन-ही-मन बहुत दुखी हुआ।

: ३ :

आगे बढ़ने पर फाहियान को ईखा स्थान मिला। ईखा के राजा से फाहियान मिला। उस राजा के यहां बहुत-सी रानियां थीं। वे सजावट के लिए सिर पर आठ सींग लगाती थीं। उन सींगों में लाल मूंगे जड़े रहते थे। रानियों का यही मुकुट था। शहर के अमीर आदमियों की औरतें भी सींगों का मुकुट पहनती थीं।

ईखा प्रदेश बहुत धनी-मानी था। घरों में बैठने के लिए हाथीदांत के पीढ़े होते थे और उनपर सोना मढ़ा रहता था। उन्हीं पीढ़ों पर बैठकर खाना खाया जाता था।

ईखा प्रदेश में नर-हत्या होती थी। वहां के लोग आदमियों को मारकर खा जाते थे। यह बात जानकर फाहियान के साथियों के तो प्राण ही सूख गये।

ईखा से आगे पोसी नगरी मिली। यह नगरी दैत्यों की थी। वहां के रहनेवाले एक भयानक दैत्य की पूजा किया करते थे, ताकि वह नाराज न हो। पोसी में एक नदी बहती थी और दो बड़े-बड़े कुंड थे। जो भी उस नगरी में आता था, दैत्य की पूजा जरूर करता था। फाहियान ने भी उस दैत्य की पूजा की और वे आगे बढ़े, लेकिन कठिनाइयों का सिलसिला अभी खत्म नहीं हुआ था। भारत अभी बहुत दूर था।

चलते-चलते एक जगह ऐसी आई, जहां चारों तरफ पहाड़-ही-पहाड़ थे। उन पहाड़ों की चट्टानें टूटी हुई थीं और एक-दूसरे पर सधी थीं। जरा-सी हवा चलने पर चट्टानें लुढ़कने लगती थीं। उनपर से होकर निकलना जोखम का काम था। चट्टान सरकी तो बचना मुश्किल था। पर फाहियान को तो हर हालत में अपनी यात्रा पूरी करनी थी। उसने जैसे-तैसे उन पहाड़ों को पार किया। सामने सिमि नाम का इलाका दिखाई पड़ा।

सिमि के इलाके में ढालू पहाड़ों पर बहुत पतली पगडंडियां थीं। ये रास्ते पहाड़ को काटकर बनाये गए थे। एक जगह बहुत गहरी खाई पड़ी। उसे पार किये बिना आगे बढ़ना मुश्किल था। उस खाई पर रस्सी

का पुल झूले की तरह लटक रहा था। हथेली पर जान लेकर उन लोगों ने उस पुल को पार किया तो दूसरी खाई आ गई। वह खाई बहुत ही गहरी थी। नीचे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। इस खाई पर लोहे का पुल था और पकड़ने के लिए जंजीरें थीं। इस खतरनाक जगह को देखते ही फाहियान के दोस्तों की हिम्मत पस्त हो गई। बात भी सही थी। अगर कोई नीचे गिर पड़े तो हड्डी-पसली का पता न चले। दोस्तों ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। फाहियान ने उन्हें बहुत समझाया तब कहीं वे आगे चलने को तैयार हुए।

सिमि के इलाके को पार करते ही पता चला कि भारत का उत्तरी हिस्सा बहुत दूर नहीं रह गया है। तीनों के मन खुशी से भर गये। भारत अब पास ही था। कहा जाता है, भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा से कुछ ही दूर पर एक जगह है उद्यान ! उद्यान में भगवान् बुद्ध ने कभी अपने कपड़े सुखाये थे। जब फाहियान उस उद्यान में पहुंचा तो गर्मी शुरू हो गई थी। गर्मियों भर के लिए वह वहीं रुक गया।

उस समय गांधार में राजा धर्म विवर्धन का राज्य था। यह राजा सम्राट् अशोक के वंश का था। गांधार में फाहियान ने कुछ पुस्तकें जमा कीं

और प्रियदर्शी अशोक की शिक्षाओं से परिचय किया। अशोक ने ही विदेशों में बौद्ध धर्म का बहुत अधिक प्रचार किया था।

गांधार से होते हुए वह पुरुषपुर पहुंचा। पुरुषपुर का नाम ही बिगड़कर पेशावर हो गया है, जो कि अब पाकिस्तान में है। पुरुषपुर में फाहियान का एक साथी बहुत बीमार हो गया। वह साथी बच नहीं सका। रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई। मित्र की मौत से फाहियान बहुत दुखी हुआ। तभी छूटे हुए तीनों मित्र भी वहां आकर मिल गये और यात्रा फिर शुरू हुई।

उत्तर-पश्चिमी हिमालय को उस समय लघु-हिमालय कहते थे, क्योंकि उत्तर-पश्चिम में हिमालय पर्वत उतना ऊंचा नहीं है, जितना कि वह उत्तर में है।

लेकिन लघु हिमालय पर भी सर्दी कड़ाके की थी। सबके हाथ-पैर नीले पड़ गये। सर्द हवाएं तीर की तरह चुभने लगीं और कान सुन्न पड़ गये। भयंकर सर्दी से फाहियान का एक और साथी बीमार पड़ गया। उसके मुँह से सफेद फेन आने लगा और बचने की कोई आशा न थी। लेकिन वह आदमी बहुत साहसी और समझदार था। उसने फाहियान से

कहा "तुम लोग इस जगह मत रुको, नहीं तो बीमार पड़ जाओगे। यात्रा भी पूरी नहीं कर पाओगे। इसलिए मेरी चिंता मत करो। मुझे तो अब मरना है। तुम लोग आगे जाओ।"

इतना कहने के कुछ ही देर बाद उस साथी की मृत्यु हो गई। भारत की सीमा तक पहुंचते-पहुंचते फाहियान के दो साथी मर चुके थे। पर वह इरादे का पक्का आदमी था। इतनी मुसीबतें और साथियों के मरने का दुःख झेलते हुए भी उसने हिम्मत नहीं हारी और आगे चल पड़ा।

सिंधु नदी को देखते ही सबका दिल खुशी से नाच उठा। फाहियान सिंधु की सुन्दरता ही देखता रह

गया। सिंधु को पार करने से पहले उसने पवित्र नदी की पूजा की। उसके जल को प्रणाम किया, आचमन किया और उसमें वह मजे से नहाया भी।

सिंधु को पार करके वह मध्य भारत जाना चाहता था, क्योंकि बौद्ध धर्म की पुस्तकों का खजाना मध्य भारत में ही था।

आज जिसे हम पटना कहते हैं, उसीका नाम उस समय पाटलिपुत्र था। फाहियान घूमता-घामता वहां पहुंचा। वहां उसने देखा कि विद्यार्थियों को सारी विद्याएं मौखिक रूप से पढ़ाई जाती हैं।

पाटलिपुत्र में रहकर फाहियान ने संस्कृत सीखी। इसमें उसे तीन वर्ष लगे। संस्कृत पढ़कर उसने भगवान् बुद्ध के उपदेशों की नकल करना शुरू किया।

जब वह पाटलिपुत्र में रह रहा था, उसने वहां का रथ-यात्रा-उत्सव देखा। इस उत्सव पर सजे हुए रथ निकाले जाते थे, जिनमें रस्सियां बंधी रहती थीं। उन रथों को आदमी खींचते थे। रथयात्रा में बहुत भीड़ होती थी। सबसे बड़े रथ पर जगन्नाथजी की मूर्ति रखी रहती थी और रथों की सजावट हीरे-जवाहरातों से होती थी। भीड़ भी बहुत होती थी। संगीत का आयोजन भी होता था। रथयात्रा के अवसर पर गरीबों को दान और बीमारों को मुफ्त

दवाइयां भी बांटी जाती थीं। रथयात्रा का दृश्य देखकर फाहियान बहुत प्रभावित हुआ। उसने भारत-यात्रा के बारे में जो पुस्तक लिखी है, उसमें रथयात्रा की बहुत तारीफ की है। पाटलिपुत्र की इमारतों और सुन्दरता को देखकर उसने लिखा था कि यह नगर देवताओं ने बनाया है।

फाहियान पाटलिपुत्र में बहुत दिनों रहा। फिर उसकी इच्छा तक्षशिला देखने की हुई। तक्षशिला उस जमाने का एक बड़ा विश्वविद्यालय था। विद्वानों का जमघट वहां रहता था। तक्षशिला का सम्बन्ध भगवान् बुद्ध से भी था।

कथा है कि तक्षशिला में एक बार भगवान् बुद्ध पधारे। जंगल में एक भूखी सिंहनी अपने बच्चे को मारकर खाने जा रही थी। भगवान् बुद्ध ने उसे रोका और पूछा, "तुम अपने बच्चे को क्यों मार रही हो?"

सिंहनी ने कहा, "महाराज, मैं भूखी हूं!"

यह सुनकर भगवान् बुद्ध ने अपना मांस काटकर सिंहनी को खिलाया और उसके बच्चे की जान नहीं जाने दी।

जब फाहियान ने यह कथा सुनी तो उसकी आंखों में आंसू आ गये। फाहियान का मन तक्षशिला

गया। सिंधु को पार करने से पहले उसने पवित्र नदी की पूजा की। उसके जल को प्रणाम किया; आचमन किया और उसमें वह मजे से नहाया भी।

सिंधु को पार करके वह मध्य भारत जाना चाहता था, क्योंकि बौद्ध धर्म की पुस्तकों का खजाना मध्य भारत में ही था।

आज जिसे हम पटना कहते हैं, उसीका नाम उस समय पाटलिपुत्र था। फाहियान घूमता-घामता वहां पहुंचा। वहां उसने देखा कि विद्यार्थियों को सारी विद्याएं मौखिक रूप से पढ़ाई जाती हैं।

पाटलिपुत्र में रहकर फाहियान ने संस्कृत सीखी। इसमें उसे तीन वर्ष लगे। संस्कृत पढ़कर उसने भगवान् बुद्ध के उपदेशों की नकल करना शुरू किया।

जब वह पाटलिपुत्र में रह रहा था, उसने वहां का रथ-यात्रा-उत्सव देखा। इस उत्सव पर सजे हुए रथ निकाले जाते थे, जिनमें रस्सियां बंधी रहती थीं। उन रथों को आदमी खींचते थे। रथयात्रा में बहुत भीड़ होती थी। सबसे बड़े रथ पर जगन्नाथजी की मूर्ति रखी रहती थी और रथों की सजावट हीरे-जवाहरातों से होती थी। भीड़ भी बहुत होती थी। संगीत का आयोजन भी होता था। रथयात्रा के अवसर पर गरीबों को दान और बीमारों को मुफ्त

दवाइयां भी बांटी जाती थीं। रथयात्रा का दृश्य देखकर फाहियान बहुत प्रभावित हुआ। उसने भारत-यात्रा के बारे में जो पुस्तक लिखी है, उसमें रथयात्रा की बहुत तारीफ की है। पाटलिपुत्र की इमारतों और सुन्दरता को देखकर उसने लिखा था कि यह नगर देवताओं ने बनाया है।

फाहियान पाटलिपुत्र में बहुत दिनों रहा। फिर उसकी इच्छा तक्षशिला देखने की हुई। तक्षशिला उस जमाने का एक बड़ा विश्वविद्यालय था। विद्वानों का जमघट वहां रहता था। तक्षशिला का सम्बन्ध भगवान् बुद्ध से भी था।

कथा है कि तक्षशिला में एक बार भगवान् बुद्ध पधारे। जंगल में एक भूखी सिंहनी अपने बच्चे को मारकर खाने जा रही थी। भगवान् बुद्ध ने उसे रोका और पूछा, "तुम अपने बच्चे को क्यों मार रही हो?"

सिंहनी ने कहा, "महाराज, मैं भूखी हूं!"

यह सुनकर भगवान् बुद्ध ने अपना मांस काटकर सिंहनी को खिलाया और उसके बच्चे की जान नहीं जाने दी।

जब फाहियान ने यह कथा सुनी तो उसकी आंखों में आंसू आ गये। फाहियान का मन तक्षशिला

में रम गया। उसने लिखा है कि तक्षशिला के लोग बहुत विद्वान हैं। वे प्याज, लहसुन, मांस, मछली आदि कुछ नहीं खाते। न किसी जानवर को मारते हैं। एक बुराई उस समय भी थी। वह यह कि अछूत अलग ही रहते थे। समाज में घुलने-मिलने का अवसर उन्हें नहीं मिलता था। चाण्डाल जब सड़क पर चलता था, तो डंडा पटकता हुआ या लकड़ी बजाता हुआ निकलता था ताकि लोगों को यह पता चल जाय कि चांडाल आ रहा है और वे दूर हो जायं। उनसे कोई छू न जाय। अछूत लोग धर्म-ग्रन्थों को भी नहीं पढ़ सकते थे।

फाहियान ने यह भी लिखा है कि तक्षशिला में सूअर और मुर्गी पालने का रिवाज नहीं है। लोग गाय, भैंस और घोड़े पालते हैं। जानवरों को बेचा नहीं जाता, उनकी सेवा की जाती है। मदिरा की न तो कोई दूकान ही वहां थी, और न कोई पीता था। फाहियान तक्षशिला के जीवन और वहां के लोगों के उच्च विचारों से बहुत प्रभावित हुआ।

तक्षशिला में काफी दिन बिताकर फाहियान बौद्ध धर्म के अन्य तीर्थों को देखने चला। सबसे पहले वह रामग्राम पहुंचा।

आपको मालूम होगा कि भगवान् बुद्ध ने ज्ञान की

प्राप्ति के लिए राजमहल छोड़ा था। वह एक घोड़े पर चढ़कर राजमहल से रात में निकल आये थे। रामग्राम में पहुंचकर उन्होंने घोड़ा भी वापस कर दिया था और पैदल चल पड़े थे। फाहियान ने उस स्थान को देखा, जहां से भगवान बुद्ध ने घोड़ा लौटाया था। फाहियान स्वयं बौद्ध था, इसलिए वह सभी जगह देखना चाहता था, वे जगहें, जिनसे भगवान् बुद्ध का ज़रा-सा भी सम्बन्ध रहा हो।

रामग्राम से वह कुशीनगर पहुंचा। कुशीनगर आजकल कसिया के नाम से जाना जाता है। गोरख-पुर शहर के पास यह एक छोटा-सा गांव भर रह गया है। इसी कुशीनगर में भगवान् बुद्ध ने अपना शरीर छोड़ा था।

बौद्ध काल में वैशाली एक महान राज्य था। वह राज्य बौद्धों का गढ़ था। भगवान बुद्ध के मुख्य शिष्य आनंद की मृत्यु वैशाली से आठ कोस दूर एक स्थान पर हुई थी। फाहियान ने उस जगह के भी दर्शन किये।

श्रावस्ती के बारे में एक कथा प्रचलित है। कहते हैं, भगवान् बुद्ध के समय में श्रावस्ती में एक बड़ा डाकू रहता था। उस डाकू का नाम अंगुलिमाल था। वह लोगों को मारकर उनकी अंगुलियों की

माला बनाकर पहनता था। इसीलिए उसका यह नाम पड़ा था। जब भगवान् बुद्ध वहां पहुंचे तो डाकू अंगुलिमाल उन्हें मारने गया। कथा में है कि वह हथियार चलाता था तो भगवान् बुद्ध बहुत दूर दिखाई पड़ते थे। दूसरे ही क्षण वह एकदम सामने आ जाते थे। यह देखकर अंगुलिमाल बहुत घबराया और उसने उनके चरणों में गिरकर क्षमा मांगी।

फाहियान ने गृद्धकूट नामक जगह भी देखी, जहां भगवान् बुद्ध और उनके शिष्य आनन्द बहुत दिनों तक रहे थे। गृद्धकूट से आगे उसे वह स्थान भी दिखाई पड़ा, जहां भगवान् बुद्ध ने घोर तपस्या की थी। वह पोखरा भी वहीं था, जिसमें भगवान् बुद्ध नहाया करते थे।

इसी पोखरे में एक बार भगवान बुद्ध गिर पड़े थे। तपस्या करने के कारण उनका शरीर निर्बल हो गया था। पेट पीठ से चिपक गया था। उस पोखरे में से उन्हें कुछ लड़कियों ने निकाला था। उनकी निर्बलता देखकर लड़कियों ने खीर पकाकर उन्हें खिलाई थी। जिस चट्टान पर बैठकर उन्होंने खीर खाई थी, उसे भी फाहियान ने देखा और उस-फूल चढ़ाये।

फाहियान जब उस चट्टान पर फूल चढ़ा रहा

था तो हरे तोतों का एक झुण्ड उड़ता हुआ गुजरा। उसने इसे अच्छा शकुन माना। भगवान् बुद्ध ने भी

इसी जगह पर हरे तोतों का झुण्ड देखा था और उनकी साधना सफल हुई थी।

यहींपर वह वृक्ष भी था, जिसके नीचे बैठकर भगवान् बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त किया था। इसीलिए उस पेड़ को 'बोधि वृक्ष' कहते हैं।

फाहियान के समय में वह पुराना पेड़ नहीं था। उसकी जगह एक नया पेड़ उगा हुआ था। उस पेड़ के नीचे वह बहुत देर बैठा रहा और भगवान् को याद करता रहा। बोधि वृक्ष को देखकर वह अपने आंसू नहीं रोक पाया। उसे वहां बड़ी शान्ति मिली

उस स्थान की पूजा करके उसने राजगृह की ओर जाने का तय किया।

फाहियान जब राजगृह पहुंचा तो उसने देखा कि एक जगह बयालीस रेखाएं खिंची हुई हैं। उसने लोगों से उसका भेद पूछा तो मालूम हुआ कि राजगृह के राजा शुक्र ने भगवान् बुद्ध से बयालीस प्रश्न पूछे थे और कहा था कि अगर सब प्रश्नों के उत्तर मिल जायंगे तो वह उनकी शरण में आ जायगा। राजा शुक्र प्रश्न का उत्तर पाने के बाद एक रेखा खींच देता था। आखिर उसे सब प्रश्नों के उत्तर मिल गये और उसने बुद्ध की शरण स्वीकार की।

राजगृह से आगे वह अग्निकुण्ड भी फाहियान ने देखा, जिसमें भगवान् बुद्ध को जलाकर मार डालने की कोशिश की गई थी। निर्ग्रन्थ नाम के एक दुष्ट ने यह कुण्ड बनवाया था। पर भगवान् बुद्ध उस आग के कुण्ड में से निकल गये। उनका बाल तक बांका नहीं हुआ।

निर्ग्रन्थ ने दूसरी चाल चली। उन्हें विष मिला भोजन खिलाया। इसका भी असर भगवान् पर नहीं हुआ। जब निर्ग्रन्थ की एक भी चाल नहीं चली तो एक दूसरे राजा अजातशत्रु ने बुद्ध को मारने के पागल काला हाथी छोड़ा। कहते हैं, भगवान्

को देखते ही वह हाथी सफेद हो गया। उसका पागल-पन भी ठीक हो गया।

निर्ग्रन्थ और अजातशत्रु की कहानियों को सुनकर फाहियान ने यही कहा था कि जो आदमी दूसरे की सेवा करता है, मनुष्य की सेवा करता है, शत्रु उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

भारत में फाहियान ने उन सभी जगहों की यात्रा की, जहां उसे अपने धर्म से सम्बन्धित कोई भी चीज मिल सकती थी। वह भारत के बड़े-बड़े बौद्ध विहारों में गया, विद्वानों से मिला और विश्वविद्यालयों को भी देखा। बहुत-सी पुस्तकें भी उसने इकट्ठी कीं। भारत देख चुकने के बाद उसने सिंहल द्वीप देखने की ठानी। आजकल जिसे हम सिलोन या श्रीलंका कहते हैं, उसीका पुराना नाम सिंहल द्वीप है।

लंका के बारे में भी उसने अपनी पुस्तक में लिखा है। उसने देखा कि लंका के लोग समुद्र से मोती बहुत निकालते हैं। दस मोती निकालने पर तीन मोती कर के रूप में राजा को देने पड़ते थे। वहां की प्रजा खुशहाल थी। व्यापार बहुत होता था। सड़कें साफ-सुथरी थीं। चौराहों पर हर दिन धर्म का उपदेश दिया जाता था और लंका का राजा रोज हजारों गरीबों को भोजन तथा वस्त्र दान दिया करता था।

लंका में भगवान् बुद्ध का एक दांत रखा हुआ है। उस समय लंका में भी पाटलिपुत्र की तरह रथ-यात्रा होती थी। रथ में भगवान् बुद्ध का वही दांत रक्खा जाता था। तीन महीने तक यह रथयात्रा का उत्सव वहां मनाया जाता था।

फाहियान लंका की भाषा नहीं जानता था, इस लिए उसे इशारों से काम लेना पड़ता था। एक दिन वहां उसे एक चीनी आदमी मिल गया। अपने देश के आदमी को देखकर फाहियान की आंखों में आनन्द के आंसू छलछला आये। बहुत दिन हो गये थे, उसे अपना देश छोड़े। उसे अपने देश की याद आने लगी।

: ४ :

फाहियान के साथी पहले ही चीन लौट गये थे। उसे चीन छोड़े बारह साल हो चुके थे। वह आया तो पैदल था, पर पैदल जाना बहुत कठिन था, क्योंकि अब उसके पास बहुत-सी किताबें थी। कुछ उसने जमा की थीं, कुछकी नकल की थीं। यही किताबें उसकी पूंजी थीं।

वह अभी सिंहल द्वीप में ही था कि उसे ऐसे व्यापारी का पता लगा, जो अपने जहाज द्वारा चीन जा रहा था। फाहियान ने उससे बातचीत की। वह उसे साथ ले जाने के लिए तैयार हो गया।

व्यापारी के जहाज पर पुस्तकों का कीमती भण्डार लादकर फाहियान अपने देश की ओर चल पड़ा। वह बहुत प्रसन्न था। पर उसकी मुसीबतों का अभी अंत नहीं हुआ था। उसने सोचा था कि समुद्री रास्ते से कोई विपत्ति नहीं आयेगी, लेकिन हुआ उलटा!

जहाज बीच समुद्र में चला जा रहा था कि जोर का तूफान आया। जहाज डगमगाने लगा और यात्रियों में खलबली मच गई। जैसे-तैसे पहला तूफान तो शान्त हो गया, दूसरा भी गुजर गया, पर तीसरा तूफान अत्यन्त भयंकर था। जहाज के बचने की आशा नहीं रह गई थी। नीचे तली में छेद हो गया और जहाज में पानी भरने लगा। लोगों के होश उड़ गये। जहाज में ज्यादा पानी भरता देखकर व्यापारी ने एक नाव खोली और चुपके-से उसमें बैठकर भाग गया। अन्य यात्रियों ने भी नावें खोलीं। फाहियान के पास किताबों का बोझ था। यात्रियों ने कहा कि किताबें छोड़कर पहले जान बचाओ, पर फाहियान ने अपना और सब सामान समुद्र में फेंक दिया, लेकिन किताबें नहीं फेंकी। किसी तरह नाव पर किताबें लादकर वह और यात्रियों के साथ चला। चौदहवें दिन तूफान शान्त हुआ और तब नाव एक टापू के किनारे लगी।

इस टापू से उन लोगों ने एक बड़ी नाव ली और

आगे बढ़े। कुछ ही दूर जाने पर समुद्री डाकुओं ने नाव को घेर लिया। फाहियान ने सब पैसा उन्हें दे दिया,
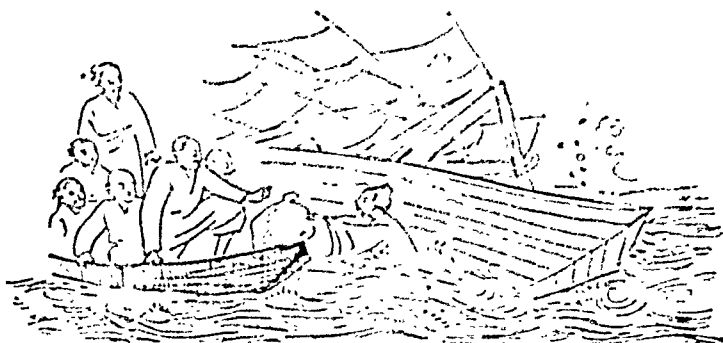
पर पुस्तकें बचा लीं। समुद्री डाकुओं से छुटकारा मिलने के बाद उनकी नाव जावा पहुंची।

सिंहलद्वीप से जावा तक पहुंचने में तीन महीने लग चुके थे। फाहियान बहुत थक गया था। जावा में वह पांच महीने रुका। वहां वह घूमा और आराम भी किया।

जावा से नाव लेकर यात्री चले तो रास्ते में फिर भयंकर तूफान आया। उस नाव में पांच ब्राह्मण भी थे। उन्होंने सोचा कि इस चीनी विदेशी फाहियान के कारण ही तूफान आया है, इसलिए वे लोग उसे समुद्र में फेंक देने की तैयारी करने लगे। लेकिन एक दूसरे दयालु और वीर यात्री के कारण फाहियान की जान बच गई। उसकी किताबें भी बच गईं।

तूफान में रास्ता खो गया। सत्तर दिन तक फाहियान

की नाव समुद्र में वेसहारे घूमती रही। आखिर अस्सी दिन बाद उन्हें धरती दिखाई दी। नाव के सभी यात्री बहुत दिनों से भूखे थे। वहां उन्हें कुछ खाने को मिला।

उन्हें यह पता नहीं था कि वे है कहांपर, तभी उन्हें दो शिकारी मिले, जो पूजा करने के लिए आये हुए थे। उन्हींसे मालूम हुआ कि वे चांगकांग नामक नगर के तट पर हैं।

चांगकांग नगर का अधिकारी बड़े आदर से फाहियान को राजधानी में ले गया। लोगों ने जब सुना कि फाहियान भारत-यात्रा करके लौट रहा है तो उनके उत्साह का ठिकाना न रहा। उन्होंने फाहियान को घेर लिया और सवालों की झड़ी लगा दी। फाहियान ने उन्हें भारत और लंका के बारे में बहुत-सी बातें बताईं।

फाहियान अब सबसे पहले चांग-आन पहुंचना चाहता था, लेकिन वहां जाने से पहले उसे नानकिंग जाना पड़ा।

नानकिंग से होता हुआ फाहियान वापस अपने उस बौद्ध विहार में पहुंचा, जहां से उसने यात्रा शुरू की थी। बौद्ध विहार में सभीने उसका भव्य स्वागत किया। भिक्षुओं और जनता ने जय-जयकार की और सम्मान से उसे भीतर ले गये। विहार में उसने अपने देशवासियों को भारत के-बारे में बताया और सच्चे

धर्म का उपदेश दिया। उसी विहार में उसने वे सारी पुस्तकें रखीं, जिन्हें वह हजारों मुसीबतें झेलता हुआ साथ लाया था। पुस्तकों का अमूल्य खजाना पाकर वहां के लोग बहुत प्रसन्न हुए। फाहियान का वह विहार धर्म तथा दर्शन का विद्यापीठ बन गया। सैकड़ों भिक्षुओं ने उन ग्रन्थों को पढ़ना शुरू किया।

फाहियान को भारत पहुंचने में छः वर्ष लगे थे और छः वर्ष तक वह भारत तथा लंका में घूम-घूमकर अनमोल ग्रन्थों को जमा करता रहा था! तीन वर्ष का समय उसे वापस पहुंचने में लगा। इस तरह पन्द्रह साल वह साहसी धार्मिक यात्री ज्ञान की खोज और संग्रह के लिए भटकता रहा। आते और जाते हुए तीस देशों का पर्यटन उसने किया।

ज्ञान की खोज और विद्या का संग्रह करनेवालों के इतिहास में फाहियान का नाम सबसे ऊंचा है। फाहियान ने अपने काम को करते हुए कभी हिम्मत नहीं हारी। जो लोग धीरज और लगन से काम करते हैं, वे जीवन में अवश्य सफलता प्राप्त करते हैं। बाधाएं उनका कुछ भी नहीं बिगड़ पातीं। संसार में बहुत-से साहसी यात्री हुए हैं, पर उस जमाने में जो काम फाहियान ने किया, वह आज भी मानवता के इतिहास में अमर रहेगा।

एवरेस्ट की कहानी

: १ :

एवरेस्ट की कहानी कोई मनगढ़न्त कहानी नहीं है। यह कुदरत पर आदमी की जीत की सच्ची कहानी है। लम्बाई-चौड़ाई में आदमी पहाड़ की बराबरी नहीं कर सकता। पहाड़ पर चढ़ना कोई आसान काम भी नहीं है, पर इतनी-सी ही चुनौती आदमी के अटूट साहस और बहादुरी के लिए कुछ कम नहीं है। एवरेस्ट की कहानी पहाड़ के साथ आदमी के जूझने की वह कहानी है, जिसकी शुरूआत तो उन्नीसवीं सदी में हुई थी, पर जिसका अंत कभी नहीं होगा। हर बार एवरेस्ट पर नये-नये दल चढ़ने की कोशिश करेंगे और फिर समय के साथ एवरेस्ट की कहानी में नये अध्याय जुड़ते जायंगे।

एक युग था, जब आदमी ने पहाड़ को डर की भावना से देखा। लोग सोचते थे, पहाड़ों पर देवता रहते हैं, जैसे कैलास पर शिव और पार्वती रहते हैं। उन पहाड़ों पर चढ़ना ठीक नहीं। भगवान् शाप दे

देंगे। पर धीरे-धीरे उसका वह विश्वास बदला और डर की भावना दूर हो गई। पहाड़ पूज्य माने जाने लगे और धीरे-धीरे उनके लिए आदमी की आत्मीयता बढ़ने लगी। पर यह आत्मीयता कब बढ़ी? जब आदमी ने पहाड़ों से परिचित होने के लिए कदम उठाया। इस परिचय में बरसों लगे। सवाल उठता है—आदमी पहाड़ों पर क्यों चढ़ता है?

सच बात यह है कि पहाड़ों का अपना जादू होता है। पहाड़ जैसे अपने-आप हमें वहां आने के लिए पुकारते हैं। उनपर जाते हैं तो उनमें विशालता और भव्यता के दर्शन होते हैं। उनकी सुन्दरता की ओर आदमी स्वयं खिच जाता है। काश्मीर के पहाड़ किसका मन नहीं हर लेते! पहाड़ों पर सूरज के उगने और छिपने के दृश्य देखने लायक होते हैं। किरणें जब बर्फ पर पड़ती हैं तो लगता है, जैसे सोना बिखेर रही हों। बर्फ से ढकी चोटियां कभी गुलाबी, कभी सुनहरी और कभी चांदी-सी उजली हो जाती हैं तो लगता है, सचमुच इन मन को हरनेवाले शिखरों [illegible] देवता रहते हैं। दूसरी बात यह है कि [illegible]-नई बातें जानने की आदमी की भूख उसे कहीं-से-[illegible] ले जाती है। हिम्मत उसमें जन्म से ही होती है।

आदमी का इतिहास बतलाता है कि उसने कठिनाइयों से हमेशा डटकर मुकाबला किया है। जैसे ही कोई बाधा दिखाई देती है, वह उसपर विजय पाने की सोचता है। बाधाओं को पार करने की यही आकांक्षा आदमी से अचरज-भरे काम करवाती रही हैं। इसीलिए पहाड़ों पर चढ़ना आदमी की बहादुरी और जिन्दा-दिली का उदाहरण है।

पहाड़ों की ओर खिचाव का सबसे अधिक श्रेय बीसवीं सदी को है। हालांकि यूरोप में पहाड़ों पर चढ़ने की तरफ लोगों का ध्यान उन्नीसवीं सदी में ही चला गया था, पर वहां के पहाड़ों की और एवरेस्ट की तुलना ही बेकार है। एवरेस्ट की जोड़ में वे कुछ भी नहीं। मिसाल के लिए स्विट्जरलैण्ड का मेटरहॉर्न पर्वत सिर्फ १४,७०१ फुट ऊंचा है और हिमालय के बाहर दुनिया की सबसे ऊंची चोटी (अर्जेण्टाइना की) एकोनकागुआ मानी जाती है। जानते हैं, उसकी ऊंचाई कितनी है? सिर्फ २२,९७६ फुट। इसी तरह यूरोप की सबसे ऊंची चोटी एल्बुर्ज १८,५२६ फुट मात्र है। इनकी तुलना में हिमालय की पचास से अधिक चोटियां ऐसी हैं, जिनकी ऊंचाई २५,००० फुट से ज्यादा है। ऐसी हालत में संसार के पहाड़ी चढ़ाई करनेवालों के

सामने हिमालय की सबसे ऊंची चोटी एवरेस्ट एक चुनौती थी।

: २ :

वहुत समय तक एवरेस्ट पर चढ़ना तो दूर, लोगों को एवरेस्ट का पता तक नहीं था। वाहरी दुनिया को इसका पता सन् १८४९ ई० में लगा। १८५२ में राधानाथ सिकदर ने, जो भारत में सर्वेयर-जनरल के दफ्तर में मुख्य कम्प्यूटर थे, पहले-पहल इस वात का पता लगाया कि हिमालय पर्वत-माला के पीछे की पंद्रहवीं चोटी संसार की सवसे ऊंची चोटी है। सिकदर १८१३ में कलकत्ते के सिकदरपारा नामक स्थान में पैदा हुए थे। वे गणित के अच्छे जानकार थे। पढ़ाई-लिखाई के दिनों में ही इसीलिए उन्हें सर्वे विभाग में जगह मिल गई थी। उन्हें इस इलाके के नक्शे बनाने और नाप-जोख करने के लिए भेजा गया। सिकदर महोदय ने उसकी ऊंचाई नापने की कोशिश की और अंत में वे इस निर्णय पर पहुंचे कि यह चोटी २९,००२ फुट ऊंची है। किन्तु इस दिशा में नाम अमर हुआ सर जॉर्ज एवरेस्ट का। उन्हींके नाम पर आज यह चोटी पुकारी जाती है।

जॉर्ज एवरेस्ट ग्रीनविच, लन्दन के निवासी थे।

एवरेस्ट की चोटी और उस पर चढ़ाई का मार्ग

उनका जन्म ४ जुलाई १७९० को हुआ था। १८०६ में वह 'कैडेट' के रूप में भारत आये थे। १८१४ से १८१६ तक उन्होंने जावा में काम किया और उसके बाद वह भारत में सर्वेयर जनरल के पद पर नियुक्त हुए। इसी सेवा-काल में उन्होंने १८४१ में हिमालय की जांच-पड़ताल पूरी की। उसके बाद के सर्वेयर जनरल सर ऐण्ड्रयूज वॉ ने रायल ज्योग्राफिकल सोसायटी तथा अपने साथियों की राय लेकर हिमालय की इस चोटी को एवरेस्ट नाम दे डाला।

वैसे इस खोज से पहले भी भारतीयों से वह छिपी न थी। हमारे पुराने साहित्य में गौरीशंकर का नाम मिलता है। इससे पहले यह चोटी इसी नाम से पुकारी जाती थी। तिब्बतियों को भी इसका पता था। वे इसे 'चोमो लुङ्मा' कहते थे। तिब्बती में इसका मतलब होता है 'संसार की देवी माता'।

एवरेस्ट की खोज के बाद उसकी ऊंचाई तय करने की बड़ी कोशिशें हुईं। शुरू में उसकी ऊंचाई २९,००२ फुट आंकी गई, पर बाद में बारीकी से खोज करने पर पता चला कि वह २९,०२८ फुट ऊंची है।

: ३ :

माउंट एवरेस्ट के उत्तर में तिब्बत है और दक्षिण

में नेपाल। बहुत समय तक इन दोनों देशों ने पर्वतों पर चढ़ाई करनेवालों को अपने देश से होकर एवरेस्ट पर चढ़ने की इजाजत नहीं दी। फिर भी सन् १८६६ में सर फ्रान्सिस यंग हसबैण्ड नामक व्यक्ति ने एवरेस्ट के पास के क्षेत्रों की यात्रा करके उसपर चढ़ने का विचार किया था, पर वह विचार पूरा न हो सका। सन् १६०६ से १६०८ तक स्वेन हेडन ने इस क्षेत्र की खोज की, किन्तु एवरेस्ट की सबसे पहली चढ़ाई सन् १६२१ में हुई। इस तरह इस चोटी के पता लग जाने के बहत्तर बरस बाद से चढ़ाई का इतिहास शुरू होता है।

सन् १६२१ की चढ़ाई ले० कर्नल सी० के० हावर्ड बरी के नेतृत्व में हुई थी। डॉ० ए० एम० केलास, जी० एल० मेलोरी आदि उस टोली के सदस्य थे। चढ़ाई का यह अनोखा अनुभव था। दल के लोग बहुत प्रसन्न थे, पर धीरे-धीरे वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये, बर्फानी ढाल सीधे खड़े नजर आते गये। रास्ता विकट होता गया। पैर बर्फ में धंसने लगे। डा० केलास अचानक बीमार पड़ गए। उन्हें कई बार वहीं आराम करने को कहा गया, पर उनमें बड़ा उत्साह था। वे कहते गए—"नहीं, मेरे सामने तो सिर्फ

हिमालय है। कोई रोग मुझे नहीं दिखाई दे रहा है।" पर उनकी तन्दुरुस्ती उनका साथ न दे सकी और आधी यात्रा में ही उनकी मृत्यु हो गई। फिर भी मेलोरी और बुलक आगे बढ़ चले। किन्तु सामने एवरेस्ट सीना ताने खड़ा था। रास्ता कठिन था। कदम-कदम पर कुदरत की वाधा थी। फिर भी वे आगे बढ़े और उनमें मेलोरी अकेला २२,९९० फुट की ऊंचाई पर उत्तरी पोल तक पहुंच गया। मेलोरी के शव्दों में—"एवरेस्ट विल्कुल मेरी आंखों के आगे था और उसे मैं ललचाई नजरों से देख रहा था।" वहां तक पहुंचने की उसमें पूरी हिम्मत थी, पर तेज हवा और काटती वर्फ को देखते हुए उसे लौटना पड़ा। हालांकि वह चढ़ाई सफल न हो सकी, पर इससे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि एवरेस्ट की चढ़ाई के लिए रास्तों की खोज हुई और लोगों को बहुत-से नये अनुभव मिले।

असल में एवरेस्ट की चढ़ाई कोई हँसी-खेल नहीं है। किसी भी पहाड़ पर चढ़ने के लिए बड़ी हिम्मत, चौकसी, धीरज और आत्म-विश्वास की जरूरत होती है। इसमें कई तरह के खतरे और कठिनाइयां होती हैं। सबसे बड़ी कठिनाई रास्ते की होती है। ढालू,

सीधी, बर्फीली चट्टानों में से रास्ता बनाकर बढ़ना होता है। अक्सर चट्टानें बर्फ के साथ टूट जाती हैं।

बर्फ़ की चट्टान पर चढ़ाई

पैरों के नीचे तो बर्फ होती ही है, ऊपर भी बर्फ की परतें जम जाती हैं।

आंखों-देखी कहानी सुनी तो पहाड़ों की चढ़ाई में रुचि रखने वाली जनता में उत्साह की एक लहर फैल गई। इसका फल यह हुआ कि एक दूसरी यात्रा की तैयारी होने लगी।

: ४ :

एवरेस्ट पर दूसरी चढ़ाई सन् १९२२ में की गई। इस चढ़ाई का संगठन ब्रिगेडियर जनरल सी० जी० ब्रूस ने किया था। टोली में मेलौरी, नोर्टन, सॉमरवेल आदि थे। इस दल ने २१,००० फुट की ऊंचाई पर अपना डेरा डाला। दल में से चार जने यहां से आगे बढ़े और बड़ी मुसीबतों के बाद २६,९८५ फुट तक पहुंच पाये। उस समय यह सबसे ज्यादा ऊंचाई थी, जहांतक कोई आदमी पहुंच पाया था। पर थकान, मौसम और दूसरी चीजों से आगे बढ़ना संभव न हो सका और वे नीचे के कैम्प पर उतर आये।

छः दिन बाद फिर इसी दल के दूसरे लोगों में फिंच और जे० जी ब्रूस ने गोरखा नायक तेजवीर बोरा को साथ लेकर फिर चढ़ाई की। पर दुर्भाग्य से बर्फानी आंधी चली और इन लोगों को दो दिन एक रात कैंप में ही बन्द रहना पड़ा। दूसरे दिन वे

ऑक्सीजन की सहायता से आगे बढ़े, पर २७,३०० फुट के बाद नीचे उतर आये।

अंतिम बार एक और कोशिश हुई। फिंच, मेलौरी, सॉमरवेल आदि फिर आगे बढ़े। यह दल २६,००० फुट की ऊंचाई तक पहुंच चुका था और आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा था कि मौसम खराब हो गया। मेलौरी बर्फ की चट्टान पर बैठकर सुस्ताने लगा, पर उसके साथी आगे बढ़ गये। तभी जोर की आवाज हुई। दल के दूसरे लोगों ने देखा कि जहां पर मेलौरी बैठा था, वहां की चट्टान टूट गई। देखते-देखते वहां पर गहरा खड्ड बन गया और मेलौरी का पता न रहा। सौभाग्य से मेलौरी की कमर से रस्सी बंधी थी। इसलिए वह बाल-बाल बच गया। पर उसके पीछे दो और टोलियां आ रही थीं। उनके सात आदमी बर्फ में दबकर मर गये।

: ५ :

इस बार की चढ़ाई से भी कई नये अनुभव आये और इन्हीं अनुभवों को लेकर सन् १९२४ में फिर एवरेस्ट की चढ़ाई के प्रयत्न शुरू हुए। इस बार की टोली में बहुत-से सदस्य वही थे, जो पिछली चढ़ाई में साथ रह चुके थे और ले० जनरल इ० एफ० नोर्टन इसके

नेता थे। दुर्भाग्य से इस बार शुरू में ही आंधी और तूफान का सामना करना पड़ा और तीन हफ्तों तक प्रकृति के साथ भयंकर लड़ाई चलती रही।

इस चढ़ाई में एक नये रास्ते की खोज हुई। यह रास्ता सन् १९२२ वाले रास्ते से कम खतरनाक था, पर दुर्घटनाएं होने से यह भी न बचा। भीषण आंधी और बर्फानी हवा से हारकर इस दल को नीचे कैम्प में उतरना पड़ा। यहां रोंगबुक मठ में लामा ने पूजा की। इससे दल के लोगों में नई आशा पैदा हुई। संयोग से मौसम सुहावना हो गया और बोझियों की कमी रहते हुए भी फिर से वे आगे बढ़ चले।

यह दल २ जून तक २६,८०० फुट पहुंच गया। फिर २७,५०० फुट तक। लेकिन तभी बर्फ से दल के एक सदस्य नोर्टन की आंखें चौंधिया गईं और उसे एक की जगह दो-दो शक्लें दिखाई देने लगीं। ऑक्सीजन की कमी थी, इसलिए सांस फूलने लगी। फिर भी युवक नोर्टन प्राणों की बाजी लगाकर आगे बढ़ा और अकेला ही २८,१२६ फुट की ऊंचाई पर पहुंच गया। उस समय तक इस ऊंचाई तक कोई भी नहीं पहुंच पाया था। वहां से एवरेस्ट बस एक हजार फुट के करीब रह गया था। वह आगे बढ़ गया होता —